

“

शिक्षा व्यवस्था दो समानान्तर दबावों से अपने को मुक्त नहीं कर पाती। एक तरफ शिक्षा व्यवस्था पर सामाजिक रूपान्तरण का दबाव होता है तो दूसरी तरफ तात्कालिक सामाजिक-आर्थिक दबाव भी शिक्षा को रूपाकार देने में जुटे होते हैं और इन्हीं दबावों की परिणति से एक वास्तविक शिक्षा व्यवस्था रूप लेती है। 'शिक्षा का सामाजिक सन्दर्भ' पुस्तक शिक्षा और समाज के रिश्ते की छानबीन करती है।

”

बदलावों पर चौकस निगाह

निरंजन सहाय

पिछले कुछ दशकों में शिक्षा का राजनैतिक संदर्भ तेजी से बदला है। 1985 में जब शिक्षा मंत्रालय का नाम बदलकर 'मानव संसाधन विकास मंत्रालय' रखा गया उसी समय यह स्पष्ट हो गया कि अब बच्चों को विश्वपूँजी निर्माण के साधन के रूप में देखने के शैक्षिक दर्शन का अविर्भाव हो गया है। 'अंबानी बिड़ला रिपोर्ट' और 'ज्ञान आयोग' की अनुसंशाओं को भी इसी संदर्भ में देखा जा सकता है। भूमंडलीकरण, निजीकरण के साथ ही औपनिवेशिक और उत्तर-औपनिवेशिक भारत में शिक्षा तंत्र ने विभिन्न बदलावों को देखा है।

दो दशक पहले जब दुनिया भर की सरकारें विश्व बैंक के एजेंडे के तहत भूमंडलीकरण और बाजारीकरण के उद्दाम आवेग में, व्यापक समाज का बाजार अनुकूलित शैक्षिक समायोजन कर रही थी, उसी समय शिक्षा के समाजशास्त्रीय संदर्भों के प्रति संवेदनशील बुद्धिजीवियों की निगाहें भी चौकस हो रही थीं। ऐसा ही उल्लेखनीय प्रयास था प्रोफेसर सुरेशचंद्र शुक्ल द्वारा एक ऐसे ग्रंथ की कल्पना जिसमें शिक्षा के समाजशास्त्रीय संदर्भों का विस्तृत और विश्लेषणपरक मूल्यांकन हो सके। 2008 में इसी परियोजना ने मूर्त रूप लिया और सुरेश चंद्र शुक्ल और कृष्ण कुमार के संयुक्त संपादन में ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन ने 'शिक्षा का समाजशास्त्रीय संदर्भ' पुस्तक प्रकाशित की। यह पुस्तक मौजूदा शिक्षा विज्ञान में उपस्थित समाज शास्त्रीय संदर्भों को न सिर्फ व्याख्यायित करती है बल्कि यह भी घोषित करती है कि समकालीन शैक्षिक विमर्श पर कोई भी चर्चा इस संदर्भ के बिना संभव है नहीं। पुस्तक के आमुख में प्रो. कृष्ण कुमार कहते हैं, 'समाजशास्त्रीय सोच और शोध ने शिक्षा विज्ञान के विकास में इतना महत्वपूर्ण योगदान दिया है कि आज शिक्षा के संबंध में विचार-विमर्श समाज शास्त्रीय पहलुओं पर ध्यान दिए बगैर हो ही नहीं सकता।' सामाजिक

दृष्टि से शिक्षा पर विचार करने की प्रणाली पुराने समय से ही रही है, पर एक व्यवस्थित अनुशासन के रूप में इसे पहचान बीसवीं सदी में ही मिली। यही कारण है कि पुस्तक में उस शास्त्रीय लेखन की भी पड़ताल की गई है जो दुर्खाइम, ड्यूई और मानहाइम के रचनात्मक सरोकारों से जुड़ी है।

पुस्तक में बाईस लेखों का संकलन किया गया है। संपादक हैं सुरेशचन्द्र शुक्ल और कृष्ण कुमार। अनुवादक हैं- महेश चंद्र डोनिया। पुस्तक पांच भागों में विभाजित है। पहला भाग है 'शिक्षा और समाज', दूसरा भाग है- 'अर्थव्यवस्था, राजनीति और शिक्षा', तीसरे भाग का शीर्षक

लेखक परिचय : हिन्दी साहित्य में पी.एच.डी. और पेशे से प्राध्यापक। समकालीन शैक्षिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक मुद्दों पर निरंतर लेखन। एन.सी.ई.आर.टी. समेत विभिन्न विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम समिति सदस्य रहे हैं। इग्नू (दिल्ली), कोटा खुला विश्वविद्यालय, जैन विश्वभारती (लाडनू) के पाठ लेखन से सम्बद्ध। 'केदारनाथ सिंह और उनका समय' आलोचना पुस्तक 2008 में प्रकाशित। 'शिक्षा और सरोकार' पुस्तक प्रेस में।

सम्पर्क : ए-13, कपिल विहार, एयरपोर्ट रोड, बेड़वास, न्यू सिमको वर्कशॉप के पीछे, उदयपुर, राजस्थान

है, 'शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन', चौथा भाग है- 'निर्भरता और अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था।' अंतिम भाग है- 'शिक्षण का समाजशास्त्र और पाठ्यक्रम'।

शिक्षा के लक्ष्य सामाजिक संगठनों के विशेष स्वरूप से प्रेरित और संचालित होते हैं, लिहाजा उनमें लगातार बदलाव भी होते रहते हैं। प्रस्तावना की यह घोषणा प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि 'किसी भी सामाजिक व्यवस्था के लक्ष्य और उससे जुड़े कौशल और मूल्य अनूठे या शाश्वत नहीं होते। बल्कि वे सामाजिक संगठन के खास स्वरूप के अनुसार होते हैं। इसलिए शिक्षा के लक्ष्य भी शाश्वत और अपरिवर्तनीय नहीं होते।' शिक्षा संस्थान व्यक्ति को केवल मूल्यों एवं कौशल से ही समृद्ध नहीं करते वे शिक्षार्थियों को वर्गों में भी विभाजित करते हैं- उच्च या निम्न, शक्तिशाली या शक्तिहीन।

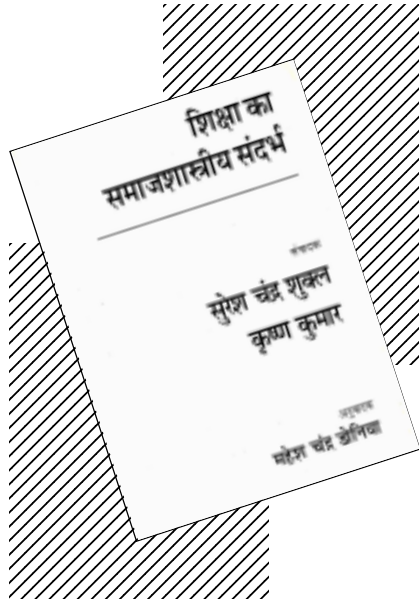
कहना न होगा वे जीवन में इसी के अनुरूप सामाजिक मान्यता या हैसियत भी प्राप्त करते हैं। 'शिक्षा और समाज' का पहला निबंध 'शिक्षा का स्वरूप और उसकी भूमिका' एमील दुर्खाइम द्वारा रचित है। यह समझना कि हम जैसा चाहें, वैसे ही अपने बच्चों का लालन-पोषण कर सकते हैं, भ्रामक है। दरअसल हमारा परिवेश हम पर जबरदस्त प्रभाव डालता है और हम चाहे-अनचाहे उसी से अनुकूलित होते हैं। दुर्खाइम बताते हैं, 'हमारे लिए यह सोचना व्यर्थ है कि हम जैसा चाहें अपने बच्चों का लालन-पोषण कर सकते हैं। हम रीति-रीवाजों के बंधन में जकड़े होते हैं, जिनकी मर्यादा को लांघने का दुष्परिणाम हमारे बच्चों को भुगतना पड़ता है, क्योंकि समाज उन्हें अपने कोप का निशाना बनाता है।' इस प्रक्रिया का दुष्परिणाम यह होता है कि कई बार शिक्षा विद्रोह या असंतोष की संभावनाएं ही समाप्त कर देती है। दुर्खाइम ने इस

अध्याय में सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक परिवेशों के मद्देनजर भावी पीढ़ी को अनुकूलित करने के प्रयासों के रूप में शिक्षा के समाजशास्त्रीय संदर्भों को विश्लेषित किया है। 'शिक्षा के लक्ष्यों का ऐतिहासिक स्वरूप' निबंध कॉर्ल मानहाइम लिखित है। इस अध्याय में विभिन्न युगों में बनने वाले शैक्षिक आदर्शों और लक्ष्यों की ऐतिहासिक विवेचना की गई है। अध्याय में यहूदी, ईसाई आदर्शों के साथ 'जेंटलमैन' या 'भद्रलोक' की अवधारणा पर विस्तार से विचार किया गया है। लेखक की आधुनिक लोकतांत्रिक समाज के

शैक्षिक लक्ष्यों पर की गई यह टिप्पणी बेहद उल्लेखनीय है कि, 'लोकतांत्रिक समाज में शैक्षिक लक्ष्यों में लचीलापन जरूरी शर्त है। तभी वे समाज विभिन्न समूहों और समुदायों के हितों की पूर्ति कर सकते हैं, जिनके धार्मिक विश्वास, सामाजिक वर्ग, राष्ट्रीयताएं, व्यावसायिक तबके और नस्लें विविधरूपी हैं।' पूंजीवाद के उन्मत्त शोर तथा कट्टरता एवं नस्लीय श्रेष्ठता को ही राष्ट्रीय चेतना के रूप में स्थापित करने के इस दौर में कॉर्ल मानहाइम का यह संदेश शैक्षिक संदर्भों या नीतियों के निर्धारण में हमसे पुनर्विचार की मांग करता है।

पुस्तक का दूसरा भाग 'अर्थव्यवस्था, राजनीति और शिक्षा' है। इस खंड का पहला लेख ए. एच. हैल्सी रचित है- 'समानता पर बहस और समाजशास्त्र'। प्रकृति ने मनुष्य को लगभग समान शारीरिक क्षमताएं और मस्तिष्क प्रदान किए हैं। लेकिन संसाधनों का असमान वितरण किसी को भरपूर लाभ का दावेदार बनाता है तो कोई अन्य मूलभूत अधिकारों तक से वंचित हो जाता है। हैल्सी ने विस्तार से समाजशास्त्रियों की समतावादी अवधारणा एवं उसके विरोधी विचारों का विश्लेषण अनेक खण्डों में किया है। शिक्षा के बुरुजुआकरण का उदारवादी सिद्धांत, मार्शल का सिद्धान्त, सामाजिक बदलाव में नियतिवाद और खुलापन जैसी अवधारणाओं का विश्लेषण करने के बाद लेखक ने समानता के अवरोधक तत्वों की व्याख्या है। हैल्सी ने तीन अवरोधक तत्वों की चर्चा की है। इनमें पहला है व्यावसायिक क्रम परम्परा की अपरिहार्यता। पेशागत क्रम परम्परा की परिवर्तनीयता की सीमा का तर्क है कि कुछ काम धंधों का तमाम तकनीकी उन्नति के बावजूद अरुचिकर, अलाभकर और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक रहना यथार्थतः अनिवार्य है।

इससे मुक्ति का तरीका सुझाते हुए लेखक कहते हैं उच्च आविष्कारशीलता लाकर, काम एवं शिक्षा के बीच अधिकाधिक लचीला संबंध बनाकर सामुदायिक शिक्षण का विशाल पैमाने पर विकास कर एवं शिक्षा बजट को अधिकाधिक उदार बनाकर इससे निजात संभव है। दूसरे अवरोध के रूप में लेखक ने शैक्षिक अवसर व शैक्षिक उपलब्धि का सामाजिक उत्पत्ति से घनिष्ठ संबंध से सरोकारहीनता बताया है। तीसरे अवरोध के रूप में आनुवंशिक वितरण की चर्चा की गई है। लेखक का मानना है वाम और



पुस्तक : शिक्षा का समाजशास्त्रीय संदर्भ
संपादक : सुरेश चंद्र शुक्ल, कृष्ण कुमार
अनुवादक : महेश चंद्र डोनिया
प्रकाशक : ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्रा.लि.
मूल्य : 550.00 (सजिल्द)

दक्षिणपंथी दोनों खेमे के लोग समानता के मुद्दे पर पूर्वग्रहों के शिकार हैं। 'गरीबी पर शिक्षा का प्रभाव और अमेरिकी अनुभव' निबंध सैमुअल बोवेल्स, हर्बर्ट जिंटिस और जॉन सिमोंस लिखित है। यह धारणा कि जन-जन की शिक्षा से आर्थिक समानताएं दूर होती हैं, निबंध असहमति प्रकट करता है। लेखकीय विश्लेषण कौशलपूर्वक यह बताता है कि आर्थिक असमानता का चरित्र और उसकी व्यापकता अर्थव्यवस्था में ही रचे-बसे होते हैं। यह सही है कि अमेरिकी अश्वेत अभी भी शैक्षिक असमानता के शिकार हैं, लेकिन उनके शोषण और पिछड़ेपन की जड़ में इस नस्लवाद के अतिरिक्त एक अन्य कारण भी है। लेखक का यह विश्लेषण एकदम सटीक है, 'असल में पूंजीपति वर्ग को श्रमिकों को ऐसी आरक्षी सेना चाहिए, जिसे वह कम वेतन देकर काम लेता रहे। इसी प्रकार गरीब अश्वेतों और निम्न मध्यवर्गीय युवाओं को बड़ी ही चालाकी से आर्थिक रूप से उत्तम पदों के अवसरों से वंचित रखा जाता है।' लेखक उदाहरणों और विश्लेषणों के बाद यह पाते हैं कि समाज को समान बनाने की युक्तियों में स्कूल प्रणाली का सर्वोत्तम रूप भी एक कमजोर युक्ति ही है।

पुस्तक का तीसरा भाग 'शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन' उन अध्येताओं के लिए महत्वपूर्ण है, जो बदलती विश्व व्यवस्थाओं के दौरान शिक्षा के नियामक संस्थाओं द्वारा समाज में प्रस्तावित समयानुरूप बदलावों में गहरी दिलचस्पी रखते हैं। डेविड ज्योफ्री स्मिथ का लेख- आर्थिक कट्टरवाद, भूमंडलीकरण और शिक्षा के अवशेष' उत्तर आधुनिक, उत्तर उपनिवेशवादी, उत्तर संरचनावादी समय में शिक्षा को कब्जाने की रणनीतियों का मारक विश्लेषण करता है। पूंजीवादी व्यवस्था की तीन रणनीतियों का लेखक ने उल्लेख किया है। इनमें सबसे मुख्य रणनीति चुनिंदा आंकड़े लेकर मीडिया अभियान के जरिए जन शिक्षा की यह छवि बनाना है कि पुरानी व्यवस्था भूमंडलीकृत दौर के लिए असफल है। दूसरी रणनीति है, 'नई वैश्विक वास्तविकता अत्यधिक स्पर्धी है इसलिए शिक्षार्थियों को विपणन कौशल, प्रस्तुति तकनीक और गलाकाट व्यापार प्रबंधन की कलाएं सीखनी होंगी।' सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली को तोड़ना तीसरी रणनीति है। निबंध का सबसे प्रभावी पहलू है प्रत्युत्तर के रास्तों का विश्लेषण। जिम्मेदार जनरणनीति का विश्लेषण करते हुए लेखक का यह कहना महत्वपूर्ण है कि, 'अर्थ सिद्धांत के रहस्य को जनता के सामने तोड़ा जाए, जिसे इसकी कमजोरियों और नाकामियों को दिखाकर किया जा सकता है।'

सुमा चिटनिस का लेख 'निर्बलों के हितार्थ संरक्षात्मक उपाय' भारतीय संदर्भों पर आधारित है जो उनकी पुस्तक 'अलांग वे टू गो बाइ' से लिया गया है। निबंध अनुसूचित जातियों में मौजूद अंदरूनी

विषमताओं लड़कियों के पिछड़ जाने की त्रासदी, अंतरजातीय विषमताओं, अंतर्राष्ट्रीय विषमताओं और समरूपता के अभाव का विश्लेषण करता है। ए. आर. कामत का लेख 'शिक्षा और सामाजिक बदलाव' विस्तार से भारतीय संदर्भों में शिक्षा में हो रहे सामाजिक बदलावों को रेखांकित करता है। यह विश्लेषण स्वाधीनता पूर्व तक की विकास यात्रा को अपना आधार बनाता है। करुणा चानना का लेख 'भारत में प्राथमिक शिक्षा में लैंगिक असमानता' उल्लेखनीय है। निबंध प्रभावी ढंग से लड़कियों के समाजीकरण और लिंग आधारित भूमिकाओं का विश्लेषण करता है। व्यवस्थागत विफलता और मौलिक मानवाधिकार उपलब्ध कराने में राज्य की असमर्थता का लेखिका विश्लेषण करती हैं। बेशक यह अध्ययन जमीनी हकीकतों और आंकड़ों के परीक्षण पर आधारित है। पुस्तक के कुछ अन्य संदर्भ जैसे- 'शिक्षा, उपनिवेशवाद और नई अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था', 'पश्चिम बंगाल में प्राथमिक शिक्षा से अंग्रेजी हटाया जाना' आदि महत्वपूर्ण हैं।

पुस्तक का अंतिम अध्याय बेहद महत्वपूर्ण है। कृष्ण कुमार लिखित यह निबंध पांच उपशीर्षकों में बंटा है। निबंध का शीर्षक है, 'अनुसूचित जातियों और जनजातियों का शैक्षिक अनुभव'। पहले भाग में ज्ञान और पाठ्यक्रम के रिश्ते की पड़ताल की गई है। लेखक अपने विश्लेषण के द्वारा यह बताने में सफल है कि कैसे पाठ्यक्रम तथ्यों की महज तार्किक पैकेजिंग नहीं है। उद्देश्य और मानदंड अलग-अलग समूहों के मुताबिक होते हैं। बकौल लेखक, 'पाठ्यक्रम ज्ञान को महज पैकेज नहीं करता, इसका पुनर्गठन भी करता है। विद्यालय, निर्धारित पाठ्यक्रम की मदद से अपने शिक्षार्थियों को उपलब्ध ज्ञान में से चयन कर वितरित करता है। चयन और वितरण दोनों प्रक्रियाओं में उद्देश्य और मानदंड शामिल होते हैं जो शिक्षार्थियों के अलग-अलग समूहों के लिए अलग-अलग होते हैं। नए विषयों को पाठ्यक्रमों में शामिल करना एक जट्टोजहद भरा अनुभव होता है। बहुधा यह संघर्ष विफलता में तब्दील हो जाता है। व्यवस्थागत ढांचा का उदाहरण देते हुए लेखक कहते हैं, 'इसका एक अच्छा उदाहरण 'मौलिक शिक्षा' के तत्त्वाधान में हस्तकौशल को स्कूल के एक वैध विषय के रूप में मान्यता दिलाने के लिए किया गया संघर्ष है। महात्मा गांधी जैसे शिखिसयत के समर्थन के बावजूद यह संघर्ष विफल हो गया। यह उदाहरण दर्शाता है कि किसी स्कूल व्यवस्था द्वारा दिए जाने वाले ज्ञान क्षेत्रों में किसी विषय की उपस्थिति प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा दिए गए मौलिक विचारों पर निर्भर नहीं करती बल्कि उन सामाजिक समूहों की हैसियत पर निर्भर करती है जिनकी आकांक्षाएं और जिनका जीवन उस विषय में प्रतिबिंबित होता है।'

निबंध में आदिवासी समाज और शिक्षातंत्र के रिश्तों पर यह मूल्यवान टिप्पणी गौरतलब है, 'इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि आदिवासी लोग उस शिक्षा का लाभ उठाने के इच्छुक नहीं हैं जो उन्हें उनके सामाजिक ताने-बाने को नष्ट करने की एक सोची समझी चाल प्रतीत होती है। 'ड्रॉपआउट बच्चों के संदर्भ में यह रूढ़िवादी धारणा कि उनकी विरासत ही इसके लिए जिम्मेदार है, बेहद अतार्किक है। सच तो यह है कि पाठ्यक्रम की विसंगतियां ड्रॉपआउट शिक्षार्थियों के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण कारक है, बकौल लेखक 'हमारे देश में शिक्षा क्षेत्र में सामाजिक अनुसंधान में पीड़ित को दोषी बताने की बीमारी इतनी तेज है कि उच्च संस्थानों में विफल होने का कारण अनुसूचित जाति के शिक्षार्थियों की अपनी कमियों को माना जाता है न कि उस पाठ्यक्रम की कमियों को जिनमें इन शिक्षार्थियों ने अपने बचपन और युवावस्था की पढ़ाई की।'

लेख में मध्यप्रदेश, राजस्थान और एन.सी.ई.आर.टी की नब्बे के दशक की पुस्तकों में शामिल पाठों का विश्लेषण किया गया है। 'शिक्षण किस प्रकार होता है', उपशीर्षक के माध्यम से लेखक ने बताया है कि शिक्षकों के पूर्वाग्रह, उनके ज्ञान के निजी मानदंड कैसे अच्छे से अच्छे विषय का सही ट्रीटमेंट नहीं कर पाते। कृष्ण कुमार फिलहाल एन.सी.ई.आर.टी. के निदेशक हैं। एन.सी.ई.आर.टी. के मौजूदा पाठ्यक्रमों के विमर्शों और निर्माण प्रक्रिया में नवाचारों और संदर्भानुकूल चुनौतियों की मौजूदगी में निश्चित रूप से उनके चिन्तन की उस पीठिका की भूमिका है, जिसकी झलक इस अध्याय में आसानी से महसूस की जा सकती है।

जिन लोगों की दिलचस्पी समाजशास्त्रीय अनुभवों और सिद्धांतों के समानान्तर शिक्षा के सरोकारों में रही है उनके लिए यह पुस्तक एक जरूरी संदर्भ है। ♦